The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 4 | April 2024
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

मिथकीय उपन्यास 'गांधारी का आत्मकथ्य' में अभिव्यक्त स्त्री चेतना का स्वरूप

रिचा नागर
शोधार्थी, हिंदी विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
richadelhi53@gmail.com

संस्कृत साहित्य से उठाए गये मिथकीय पात्रों पर रचित हिंदी साहित्य का संसार काफी समृद्ध है। हिंदी के उत्थान काल से ही मिथकीय पात्रों पर लिखा जाना आरम्भ हो चुका था। हिंदी की आरम्भिक अवस्था में ईश्वरी प्रसाद शर्मा द्वारा 'सीता' (1920), 'शकुन्तला'(1921), नरोत्तम व्यास द्वारा 'परशुराम'(1917), 'लवकुश'(1921) जैसे उपदेशात्मक उपन्यास लिखे गए जिनमें कोई विशेष दृष्टि न होकर चरित्र परिशोधन ही मुख्य विषय रहा। आजादी के बाद सांस्कृतिक गौरव के वशीभूत यह कार्य तेजी से होने लगा। वीरेंद्र कुमार जैन ने 'भक्तिदू त' उपन्यास में अंजना और पवनजय पात्रों की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया। हिंदी काव्य में भी मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय जैसे कवियों ने राधा और उर्मिला जैसे गौण मिथकीय पात्रों पर भी अपनी लेखनी चलाई और आधुनिक संदर्भों से संचित करने का प्रयास किया।

मिथकीय पात्र देश काल और परिस्थिति के हिसाब परिवर्तित होते रहते हैं लेकिन उनकी मूल आत्मा में कोई बदलाव नहीं होता। चाहे कथाक्रम में कुछ बदलाव होते रहे हो। लोक में प्रचलित पात्र लेखक के पास आते ही अपने आधुनिक संदर्भों को प्रकट करने लगते हैं। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण और मौलिक कार्य नरेंद्र कोहली ने किया है। उन्होंने महाभारत और रामायण का पुन: लेखन किया और पौराणिक जीवन मूल्यों और मान्यताओं का नवीन दृष्टि से अन्वेषण किया और मिथकीय पात्रों की प्रासंगिकता के साथ ही नये आदर्शों की भी स्थापना का प्रयास किया है। उनके द्वारा रचित 'अभ्युदय' और 'महासमर' हिंदी उपन्यास परम्परा की महान

रचनाएँ हैं। इस दिशा में दूसरा नाम मनु शर्मा का आता है जिन्होंने मिथकीय पात्रों पर स्वत्रन्त्र रचनाएँ की। यहाँ हम मनु शर्मा द्वारा रचित 'गांधारी' की स्त्री चेतना का विश्लेष्ण करेंगे जिसमें तत्कालीन पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों ने अपने हिस्से की समाजनीति और राजनीति में तारतम्यता स्थापित करते हुए व्यापक जीवन संघर्ष के मध्य स्त्री जीवन मूल्यों को बचाए रखा तथा साथ मानवीय जीवन मूल्यों की भी गरिमा नष्ट नहीं होने दी। महादेवी वर्मा ने महाभारत की स्त्री पात्रों को पुरुष की पूर्ण जीवन संगिनी माना है। वे लिखती हैं - "महाभारत की कितनी स्त्रियाँ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा कर्तव्यबुद्धि के लिए स्मरणीय रहेगी। उनमें से प्रत्येक संसार पथ में पुरुष की संगिनी है, छाया मात्र नहीं। छाया का कार्य, आधार में अपने आप को इस प्रकार मिला देना है जिसमें वह उसी के समान जान पड़े, और संगिनी का अपने सहयोगी की प्रत्येक त्रुटि को पूर्ण कर अपने जीवन को अधिक से अधिक पूर्ण बनाना। "[1] अपने इसी स्वतंत्र व्यक्तित्व की वजह से कुंती और गांधारी इतिहास में अमर रह गई।

'गांधारी का आत्मकथ्य' स्त्री जीवन की विडम्बनाओं और मानवीय जीवन मूल्यों के द्वन्द्वात्मक संघर्षो की आधुनिक व्याख्या है। जिस काल में स्त्री अधिकार परिवार की मर्यादा और राज्य अस्तित्व से परिभाषित होते थे तथा विवाह एक राजनीतिक समझौता मात्र होता था। उस समाज में गांधारी ने अपने प्रेम के बलिदान के बाद भी जीवन भर आँखों पर पट्टी लगाकर प्रेम के मूल्य को जीवन भर निभाया। न केवल निभाया अपितु उसके प्रतिकार स्वरूप एक आततायी कुरु वंश से बदला भी लिया। पौराणिक चरित्र में गांधारी इसलिए आँखों पर पट्टी बाँध लेती है कि उसका पति अंधा था तो उसका कर्तव्य है कि वह अपने पति व्रत धर्म का पालन करते हुए जीवन भर आँखों पर पट्टी ही बाँधे रखें। लेकिन उपन्यास में उसने ऐसा करके प्रेम के मूल्य को स्थापित किया। भीष्म द्वारा उसको बलात धृतराष्ट्र की पत्नी बनाने से पूर्व वह पुरुषपुर के राजकुमार को अपना हृदय समर्पित कर चुकी थी। उसकी सगाई हो चुकी थी। वसंत पंचमी के दिन मदनोत्सव में अपने प्रेमी से एकांत में मिल भी चुकी थी लेकिन भीष्म की चतुरंगिणी सैन्य वाहिनी के आगे उसके पिता की एक न चली और वह अपने राज्य और परिवार को बचाने के लिए भीष्म के साथ हो ली लेकिन वे दो कजरारी आँखें जिनको प्रथम बार देखते ही उसके मन में मयूर पंख लग गये थे उनका क्या करती? जब वह गांधार छोड़ रही थी तब उसको विदा करने सारा नगर उमड़ पड़ा

और एकटक देख रहा था। "उन्हीं आँखों में दो ऐसी अदद आँखें थी, जो एक मुझ पर लगी थीं। अचानक मेरी दृष्टि उनसे जा टकराई। मेरा हृदय धक से करके रह गया। फिर मेरी आँखें उन आँखों में ऐसी उलझी कि उन्हें छोड़ न पाई। वे आँखें भी ऐसी चिपकी कि चिपकी ही रहीं। अब मेरे लिए सारी भीड़ उन आँखों में परिवर्तित हो गई। बड़ी-बड़ी कजरारी और सागर उगलती दो आँखें।"[2] गांधारी अपनी करुणा विगलित आँखों से किसी अन्य पुरुष को नहीं देखना चाहती थी और उस प्रेम का मूल्य चुकाया ऐसे – "मुझे लगा कि अब मैं इन्हें देख नहीं पाऊँगी। पहले मैनें उधर से अपनी आँखें मूंद ली, फिर भी वे दिखाई पड़ा रही थी। अब घबराकर मैनें अपना आँचल फाड़कर आँखों पर पट्टी बाँध ली। अब वे मेरी आँखों में समा गई थी। "[3] गांधारी की यह प्रेम पीड़ा और उसका प्रतिकार (जीवन भर आँखों पर पट्टी बांधना) भीष्म की दृष्टि में कहें या राजनीतिक दृष्टि से पातिव्रत्य जीवन के प्रतिकूल नहीं है। भीष्म ने सृष्टि सौंदर्य देखने का नजरिया पति दृष्टि से ही उपयुक्त माना है और जगत में प्रचारित भी कर दिया कि यह पति प्रतिष्ठा ही है जिसके वशीभूत गांधारी ने यह निर्णय लिया है लेकिन अपने हृदय की पीड़ा और प्रतिकार की अभिव्यक्ति तो वह प्रकट रूप में कर ही न पाई।

> "कैसी विडम्बना थी। हृदय में कोई और था और समय ने किसी और को साथ लगा दिया। पति कोई और होने जा रहा था और विवाह किसी और से होने जा रहा है। सारा नगर मेरे पातिव्रत्य की सराहना कर रहा था। मैं असत्य की ऐसी डोर से बाँध दी गई थी कि जीवन भर उसे तोड़ नहीं पाई। उसी लाचारी के संकल्प पर जीती रही। कालान्तर में यही संकल्प मेरे चरित्र का अंग हो गया। "[4]

असत्य की यही डोर बाद में जाकर चाहे वह लाचारी वश हो या गांधारी में कुंठा वश उसका चरित्र निर्माण हो; अगर महभारत को गांधारी के दृष्टि से देखा जाए तो बिना गांधारी के महाभारत की कहानी आगे नहीं बढ़ेगी। ऐसा नहीं है कि गांधारी का मन उस पट्टी को उतारने का नहीं हुआ। वह सौंदर्य के दर्शन करना चाहती है। उगते हुए सूर्य की लालिमा का अपनी आँखों से पान करना चाहती है लेकिन फिर बीच में संकल्प जाता है। सौंदर्य और

आँखों की पट्टी के बीच पुरुषपुर के राजकुमार की वे दो आँखें संकल्प बनकर आ जाती है और कहती है कि सावधान ऐसा न करना वरना मैं फिर से आखों में समा जाउंगा और तुम दो पाटों में पिस जाओगी।

गांधारी ने अपना यथार्थ स्वीकार किया और फिर डूब गई उसी के भीतर। गांधारी चाहे धृतराष्ट्र की वाग्दत्ता पत्नी न हो लेकिन वह अपने पत्नी अधिकारों और अपनी अस्मिता के लिए अत्यंत जागरूक है। जब धृतराष्ट्र का मन गांधारी के साथ रति सुख से भर गया तो वह अपनी सेविकाओं के साथ रातें बिताने लगता है। गांधारी उसका विरोध करती है। उसको रति सुख और पत्नी अधिकारों की बात याद दिलाती है लेकिन धृतराष्ट्र कहता है कि नारी सदा नर की दासी रही है। वह स्त्री के तीन प्रकार बताता है – अर्द्धांगिनी, पत्नी और दासी। फिर पुरुष की इस स्थिति को समझाते हुए कहता कि 'अब तुम्हीं देखों, रथ के कई पहिए सुरक्षित क्यों रखें जाते हैं? जहाँ एक पहिया खराब हुआ, तुरंत उसे बदलकर मरम्मत के लिए भेज दिया जाता है। नारी भी पुरुष के जीवन रथ का पहिया ही है। फिर पुरुष का एक से अधिक नारी से सम्पर्क होना स्वाभाविक है। गांधारी पलट कर जबाव देती है – 'नारी भी इसी तरह सोचने लगे तो?' मेरे पति एक चुप, हजार चुप।'[5] गांधारी से उसका प्रेम तो छीन गया लेकिन जिस यथार्थ जीवन को उसने स्वीकार कर लिया उसके प्रति पूर्णत: समर्पित हो गई और राज्य की महत्वाकांक्षा पाल बैठी। वह अपनी समकक्ष पांडू कुंती पत्नी से ईर्ष्या पाल बैठती है क्योंकि उसको पता लगता है कि कुंती गर्भवती है और उसके जन्म लेने वाला दूसरा पुत्र उसके पुत्र से बड़ा हुआ तो वही राजकुमार होगा। यह स्वाभाविक ईर्ष्या स्त्रियोचित नहीं है। राजसत्ता के प्रति महत्वाकांक्षा का बीज संघर्ष में परिणत होता है। गांधारी का गर्भ भी उसकी इसमें सहायता करता हुआ दिखाई देता है और जब वह गर्भवती होती है तो एक दिन इस दु:ख और ईर्ष्या में कि मैं पहले पुत्र को जन्म नहीं दे सकी लेकिन उसका पुत्र कुंती के दूसरे पुत्र से छोटा ही रहेगा, वह भी युवराज नहीं बन सकता इसलिए उसने अपने ही पेट पर मुक्का मारकर गर्भपात करवा लिया। लेकिन वह अपना मानवोचित गुण तभी भी नहीं खोती। युधिष्ठिर के प्रति उसका ममता भाव कभी तिरोहित नहीं हो सका जबकि वह जानती थी कि वही अगला राजा होगा और उसकी ईर्ष्या का कारण ही युधिष्ठिर ही था। कुंती गर्भपात के बाद गांधारी से मिलने आती है युधिष्ठिर को भी साथ ले आती है। उसको देखते ही गांधारी हृदय पर दु:ख का

उल्कापात सा हो गया लेकिन जैसे ही युधिष्ठिर ने ताई-ताई कहकर उसके गले में बाहें डाली उसका हाथ अपने आप ही उसकी पीठ पर चला गया और उसको छाती से चिपका लिया। तभी वह कही आत्म विश्लेष्ण में खो जाती है – "मेरा अपराधी व्यकित्त्व उसे उठाकर चूमने में संकोच कर रहा था फिर भी मैं स्वयं को रोक नहीं पाई। मैनें कई बार उठाकर उसे चूमा। मेरे मन की कालिमा उसके कपोलों में आ लालिमा में बदलती गई। कितना निष्कलुष, निष्पाप और निस्स्वार्थ होता है बालक का प्रेम। उसके दर्पण सदृश स्वच्छ मन पर किसी के विकारों का बिम्ब नहीं बनता। उसे क्या मालूम कि उसके प्रति मेरी ईर्ष्या ने यह सब अनर्थ किया है।"[6] उसका मातृ हृदय तब भी अपराध बोध से ग्रसित हो जाता है जब भीम को दुर्योधन विष देकर गंगा में फेंक देता है।

गांधारी को जब खबर लगी कि इन्द्रप्रस्थ के राजसूय यज्ञ में द्रोपदी ने दुर्योधन को 'अँधे का पुत्र अंधा' कह कर अपमानित कर दिया तो गांधारी को शक हुआ शक हुआ कि द्रोपदी ऐसा अपमान नहीं कर सकती। कही यह कर्ण की तो चाल नहीं है क्योंकि यह खबर दुर्योधन को कर्ण ने ही दी थी। शकुनि ने जब गांधारी को इस आशय की सूचना दी तो गांधारी ने आशंका व्यक्त की –"वह तो द्रोपदी द्वारा चोट खाया ऐसा नाग है, जो उस पर बार-बार फुफकारता रहेगा। सत्य न जानते हुए इस घृणित प्रसंग में द्रौपदी की मुख्य भूमिका निर्धारित करना पूरी नारी जाति पर कलंक लगाना होगा। इसका परिणाम भयंकर होगा।"[7] गांधारी को द्रौपदी के चरित्र और कर्ण की ईर्ष्या तो ज्ञात थी ही साथ ही वह दो अन्य कारणों से भी द्रौपदी पर ऐसा अपमानजनक आरोप नहीं सह सकती थी। पहली, वह द्रौपदी के गुणों से परिचित थी क्योंकि गांधारी के मत में अगर द्रौपदी को अपमानित ही करना होता तो वह राजसभा में ही अपने सतीत्व के बल पर कौरवों को शापित कर सकती थी या महाराज से दो वरदान में वह उसको अपमानित करने वाले दुर्योधन, दुशासन और कर्ण सहित अन्य कौरवों को सजा दिला सकती थी लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। दूसरा, अगर यह बात सच भी हो तब भी इसका छुप जाना या प्रचारित न होना ही ज्यादा श्रेयस्कर था क्योंकि वह अपने पुत्रों की मृत्यु नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि पांडव अगर एक बीहड़ स्थान में भी इतना अच्छा साम्राज्य खड़ा कर सकते हैं तो उसके पुत्रों का वध करना या युद्ध में हराना कोई ज्यादा मुश्किल भरा काम नहीं था। गांधारी हमेशा से ही पांडवों से इस बात को लेकर आशंकित रहती है कि वे दिन प्रतिदिन तब

भी शक्तिशाली होते जा रहे हैं जबकि उनके पास न राज्य है न सेना है और न ही इतना धन है। इधर दुर्योधन के दुर्गुण दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं और उसी वजह से पांडव प्रजा में ज्यादा प्रसिद्ध हो रहे हैं।

लेकिन एक समय ऐसा आता है जब वह द्रौपदी का बचाव इसलिए कर लेती है क्योंकि अपने पुत्रों की मृत्यु उसे अपने आसपास ही मंडराती नजर आती है। जब द्रौपदी को राजसभा में वेश्या बोलकर चीर-हरण किया जाता है और भीम द्वारा उसके पुत्रों को मारने की प्रतिज्ञाएँ की जाती है तब वह घबरा तो उठती है लेकिन अपना विवेक नही खोती और बात को स्त्री पुरुष अधिकारों तक ले आती है। जिस कुरु सभा में नारी का आगमन भी निषेधित हो वहाँ जाकर गांधारी कहती है कि "स्त्री पुरुष की संपति नहीं है। वह उसकी अर्द्धांगिनी है। अग्नि आदि देवताओं के समक्ष पुरुष उसे शपथपूर्वक स्वीकार करता है।"[8] धृतराष्ट्र को पांडवों का डर दिखाकर द्रौपदी को वरदान दिला देती है।

गांधारी के सम्पूर्ण जीवन का समग्रत: देखें तो लगता है कि वह दो सेतुओं के मध्य झूल रही है। उसका चरित्र दो रूपों में प्रकट होता है। एक बार लगता है कि परिस्थितियों की मारी परवश नारी है जो अपने नियति वश सब कुछ करती जाती हैं। दृष्टि को थोडा राजनीतिक वक्रता के साथ शकुनि और उसके वार्तलाप तथा गतिविधियों की तरफ मोड़ते हैं तो लगता है कि वह एक चतुर और कूटनीतिक राजनेत्री है। जिसके आँसूओं का मतलब धूर्तता है। जिसकी उदासी का मतलब गोपनीयता है। किसी निर्णयात्मक क्षण में चुप और देखती रहो। गांधारी जानती है कि उसके पुत्रों के मन में पांडवों के प्रति विष बेल का सिंचन करने वाला उसका भाई ही है। वह यह भी जानती है कि मेरे द्वारा बोई गई महत्वाकांक्षा की फसल का ही परिणाम है - कौरवों-पांडवों का विद्वेष। उसने कभी शकुनि को नहीं टोका। वह चाहती तो शकुनि को हस्तिनापुर से निकलवा सकती थी चूँकि शकुनि की धूर्तता उसको बचपन से ही पसंद नहीं थी लेकिन गांधारी बड़ी चालाकी से अपनी नियति (पति के अंधे होने और स्वयं की आँखों पर पट्टी बँधे होने) की आड़ में धूर्ततापूर्ण राजनीतिक खेल रचाती चलती है।

अपने अंतिम समय में गांधारी आत्मविश्लेषण की तरफ जाती दिखाई देती है। पहले उसकी महत्वाकांक्षा उसके बल पर ही दौड़ती थी लेकिन जब राजनीति के सूत्र हाथ से छूटते दिखाई देने लगे तो वह दार्शनिक दुनिया की सैर करने निकल पड़ती है। वह नींद में बडबडाती है –"नारी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है उसकी परवशता। पिता की परवशता, पति की परवशता, पुत्र की परवशता, समाज की परवशता।"[9] सबसे ज्यादा वह अपने पति के साथ रिश्तों का अन्वेषण करती है क्योंकि उसके जीवन में इतना सारा घटनीय इसलिए ही हुआ कि उसको एक अँधे के साथ बाँध दिया गया। न केवल उसके शरीर को नियंत्रित किया गया अपितु उसकी दृष्टि का सौंदर्य भी छीन लिया गया। उसे नियति और इच्छाओं में महावन में भटकने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा। वह चाहकर भी उनसे मुक्त न हो पाई और देखते ही देखते समस्त बंधुजनों से भी दूर होती चली गई। युद्ध संकट के बीच वह पर्यंक पर पड़े-पड़े विचारों से घिरी है – "हमारा जीवन भी क्या है। विवाह के इतने दिनों बाद भी पति और पत्नी के बीच एक दीवार बनी रही- एक विशेष प्रकार के संकोच की दीवार। इसे किसी ने बनाया नहीं था वह स्वयं बन गई थी। वह हमारे मन को एक दूसरे के सामने खुलने नहीं देती थी। शायद जिस तरह से मुझे विवश करके मुझे लाया गया था और जिस तरह से धृतराष्ट्र के अप्रिय खूँटे में एक उन्मुक्त सिंहनी को सुंदर दुधारू गाय की तरह बाँध दिया गया था, उसकी प्रतिक्रिया न तो मेरे मन पर अच्छी पड़ी थी और न मेरे पति के मन पर। वे अपनी असुन्दरता की हीं भावना से पीड़ित थे। ठीक इसके विपरीत मुझे ऐसा लगता था कि एक चपल क्लिक वैभव के कीचड़ में डाल दी गई है। एक अपनी हीनता की वृति से प्रताड़ित था तो दूसरी अपनी सौंदर्य गर्विता से। फिर भी हम दोनों ने एक दूसरे को पति पत्नी के रूप में स्वीकार किया था। उसका मैं पूरी निष्ठा के साथ पालन करती थी। नियति ने जिस पातिव्रत्य का दायित्व मुझे सौंपा था, मैनें उसे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक तन-मन से अंगीकार किया था। यद्यपि नियति की क्रूरता कभी कभी याद आती थी और मन ही मन मैं उसकी निर्ममता को कोसती थी, जिसने फूलों का रंगीन सपना देखने वाली तितली की आँखों पर पट्टी बाँध दी थी।"[10] गांधारी को पता चलता है जयद्रथ भी मारा गया। आँखों के सामने बेटी को विधवा हुई देखकर दुर्भाग्य को कोसने लगती है और संज्ञा शून्य हो जाती

निष्कर्षत: 'गांधारी का आत्मकथ्य' उपन्यास गांधारी के मिथकीय पात्र को आधुनिक स्त्री चेतना के साथ जोड़ देता है। मजबूरी वश उसे धृतराष्ट्र के साथ जिंदगी गुजारनी पड़ी। वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकती थी क्योंकि राज्य और समाज की मान्यताओं और शक्ति के आगे व्यक्तिगत प्रयास महत्वहीन हैं। गांधारी ने प्रतिकार का तरीका अपनाया- आँखों पर पट्टी बाँध ली। जब बाँधी थी तब तो अपने प्रेमी को हमेशा के लिए अपनी आँखों में के कोटरों में बंद कर लेने का ही भाव था, लेकिन बाद में वह एक अनिवार्य राजनीतिक आवश्यकता बन गई। उसी पट्टी के बहाने वह कूटनीतिक नेत्री बन जाती है। ईर्ष्या और द्वेष गांधारी के चरित्र के मुख्य घटक हैं जिनके साथ साथ कभी-कभार वात्सल्य भी दस्तक देता है लेकिन वह पुत्र अधिकारों की बात आते ही न केवल तिरोहित हो जाता अपितु राज्य महत्वाकांक्षा को और तीव्र कर देता है। जिंदगी के अंतिम समय तक भी गांधारी अपने 'प्रेम के लिए प्रतिकार' और 'राज्य महत्वाकांक्षा' दोनों ही लक्ष्यों को न प्राप्त कर पाने की पीड़ा और पुत्र वंचना का अभिशाप झेलती रहती है।

सन्दर्भ :

[1] शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2018, पृ .13
[2] गांधारी का आत्मकथ्य, मनु शर्माप्रभात प्रकाशन ,,2016 , पृ .80
[3] वही
[4] वही, पृष्ठ 82
[5] गांधारी का आत्मकथ्य, मनु शर्माप्रभात प्रकाशन ,,2016 , पृ .97
[6] गांधारी का आत्मकथ्य, मनु शर्माप्रभात प्रकाशन ,,2016 , पृ .152
[7] वही .पृ ,,245
[8] गांधारी का आत्मकथ्य, मनु शर्माप्रभात प्रकाशन ,,2016 , पृ.262
[9] वही पृ .270-71
[10] गांधारी का आत्मकथ्य, मनु शर्माप्रभात प्रकाशन ,,2016 , पृ.298